❑ वंश बहादुर सिंह

रावण का लक्ष्मण को उपदेश

रामायण भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। मानव जीवन को ऊंचा उठाने वाले अनेक सरल, सरस, सुन्दर एवं विचित्र उद्धरणों से यह काव्य भरा पड़ा है। रावण प्रकाण्ड विद्वान था, उसने वेदभाष्य किया था, वह एक महान् वैज्ञानिक भी था। अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में जो नीति-शास्त्र के उपदेश उसने लक्ष्मण को दिये, वे गूढ़ तत्वों से भरे पड़े हैं। अपने अनुभवों के आधार पर इनकी व्याख्या कर उसने इनको बड़ा ही रोचक एवं बोधगम्य बना दिया है।

श्रीराम के अमोघ ब्रह्मास्त्र से रावण का वंश विदीर्ण हो गया, उसका दुर्जय हृदय फट गया, नाभिस्थित सुधा कुण्ड भस्म हो गया और वह भूमि पर उन्मत्त गिर पड़ा। राम ने तुरन्त लक्ष्मण को बुलाया और कहा, "रावण का अभी देहान्त नहीं हुआ है। वे श्री रामेश्वर की स्थापना में मेरे आचार्य रहे हैं। उन्होंने मुझे विजयी होने का आशीर्वाद दिया और अपनी आहुति देकर वह आशीर्वाद सत्य किया। अभी उनको दक्षिणा देनी है। लेकिन लक्ष्मण, नीति शास्त्र का यह सूर्य मेरे उपस्थित होते ही अस्त हो जायेगा, तुम जाकर उनसे उपदेश ग्रहण करो।

लक्ष्मण रावण के समीप गये, सिर के समीप खड़े होकर उच्चस्वर में नमस्कार किया और उपदेश देने की प्रार्थना की। उनके पुकारने पर भी रावण के नेत्र नहीं खुले और निराश होकर लक्ष्मण को श्रीराम के पास लौट आना पड़ा। श्री राम वस्तुस्थिति को, सारा वृतान्त सुनकर, समझ गये और लक्ष्मण से कहा, "तुमने आचार्य के समीप उनको अभिवादन नहीं किया, जो जिज्ञासु सम्यक् सम्मान न दे, उपदेश के अनुकूल स्थिति का ध्यान न रखे, ऐसे प्रमत्त जिज्ञासु का परित्याग कर देना शास्त्र की मर्यादा है, इसका तुमने स्मरण नहीं रखा।

लक्ष्मण फिर रावण के समीप गये, इस बार वे रावण के पैरों के समीप खड़े होकर, मस्तक झुकाकर उच्चस्वर में बोले, "मैं श्रीराम अनुज लक्ष्मण आचार्य पौलस्त्य के चरणों में प्रणिपात करता हूं।" दशग्रीव के नेत्र खुल गये। यह देखकर दोनों हाथ जोड़कर विनम्र स्वर में लक्ष्मण बोले- अग्रज ने मुझे आपके समीप नीति शास्त्र का उपदेश ग्रहण करने के लिए भेजा है और वे भी शीघ्र उपस्थित हो रहे हैं।

रावण ने कहा, 'लक्ष्मण। मैं बोलने में पीड़ा का अनुभव कर रहा हूं। मेरी इन्द्रियां शिथिल होती जा रही हैं। प्राण अब प्रस्थान के लिए उत्सुक हैं लेकिन तुम नीति-शिक्षा ग्रहण करने आये हो। कोई विद्वान अपने समीप उपस्थित जिज्ञासु को निराश करता है तो विद्या उसे शाप देती है। वह पिशाच बनता है। यद्यपि अत्यंत अल्प समय है और फिर दूसरा समय भी तो नहीं है। मैं तुम्हें निराश नहीं करूंगा। मैं अपने अनुभव का सार सुना दूं, इतना ही समय है और तुम्हारे लिये इतना ही पर्याप्त है।'

रावण ने अपना अनुभव सुनाना प्रारम्भ किया। "जो व्यक्ति अपने स्वजनों और सेवकों की सुख-सुविधा का पूर्ण रूप से ध्यान रखता है। उनकी स्वतंत्रता-उच्छृंखलता को भी सहन करता है, उनके स्वजन और सेवक अपने प्राण देकर भी उनके अत्यंत अप्रिय आदेशों को स्वीकार कर लेते हैं। राक्षसों ने मेरा साथ नहीं छोड़ा, मेरे लिए युद्ध में प्राणों का उत्सर्ग किया। मेरी अति उग्र प्रकृति को सहकर भी मेरा सम्मान करते रहे, यह केवल आतंक से संभव नहीं था, मैंने उन्हें पूरी स्वतंत्रता दे रखी थी और उनकी रुचि, सुख, सुविधा का सर्वदा ध्यान रखता रहा था।

यदि कोई सेवाशील, विनम्र एवं धर्मपरायण व्यक्ति अपना विरोध करे, अपने मन के विरुद्ध बोले तो उसका अपमान या उपेक्षा करने की जगह पर, उसकी बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। मैं जानता था कि मेरा अनुज विभीषण धर्मात्मा है, वह चाटुकारी नहीं कर सकता, वह अपने आश्रयदाता की बात अप्रिय होने पर भी अवश्य कहेगा, अपने अहित का भय होने पर भी कहेगा, लेकिन मैंने उसका तिरस्कार जानबूझ कर किया, क्योंकि अगर वह तुम्हारे पक्ष में नहीं गया होता तो आज लंका अनाथ हो जाती। राम इस पर शासन करने को नहीं रुकेंगे। इन सब चीजों को मैं अच्छी तरह से जानता था और इसीलिए मुझे अपने अतिप्रिय निर्दोष भाई को निर्वासित करना पड़ा।

लक्ष्मण! शत्रु को सामान्य मानकर उसकी उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए तथा इस शत्रु के भय से चिन्तित होकर, अपने अनुयायियों में भय के प्रवेश को अवसर नहीं देना चाहिए। मुझे कोई यह दोष नहीं दे सकता कि मैंने अपने शत्रु की उपेक्षा की। राम के प्रगट होने के क्षण से ही मैं सतर्क था। जब तुम लोग ससैन्य सुबेल पर आये, मैं अपने सैनिकों, सेनापतियों के साथ उत्सव मना रहा था और मल्लयुद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देख रहा था।

लक्ष्मण! सफलता ही सदा श्रेयस्कर नहीं होती, कभी-कभी असफलता, पराजय तथा मृत्यु का भी आयोजन करना पड़ता है। इस युद्ध में मैंने अपने समस्त वीरों की आहुति दे दी है। लेकिन मैं जब तक जीवित रहा, तुम लंका में प्रवेश नहीं कर सके। मेरे सभी अनुयायी वीर कहां गये, इसको मुझे बतलाने की आवश्यकता नहीं। अब तुम स्वयं, सोचकर बतलाओ कि विजय किसकी हुई है।" लक्ष्मण ने कहा, "आचार्य आप धन्य हैं, विजय आपकी हुई है।"

जब रावण का स्वर शिथिल होने लगा, उसने नेत्र संकेत से लक्ष्मण को अपने समीप बुला लिया, कहा— "अब मैं अधिक बोल नहीं सकूंगा। मेरी मुख्य बातों को ध्यान लगाकर सुनो। जीवन में अगर कोई महत्वपूर्ण कार्य करने की महत्वाकांक्षा हो तो उसे सब सामान्य काम छोड़कर पूर्ण कर डालना चाहिए। उसे कल पर टालने से वह कभी भी पूरी नहीं होगी। मैं सम्पूर्ण क्षार समुद्र को मधुर पेयजल में परिवर्तित कर देना चाहता था। सम्पूर्ण सागर को अनेक भूमि में विभाजित करके बांध देता, एक भाग के जल को उष्ण करके, वाष्प बना देता, बचे हुए लवण को पृथ्वी पर पर्वताकार एकत्र कर देता और वाष्प को वारिद बनाकर वर्षा के निर्मल जल से सागर के सभी भागों को पुन: भर देता, मेरे लिए असम्भव काम नहीं था।"

"मैं स्वर्ग के लिए सोपान निर्मित कर देना चाहता था ताकि पापी और पुण्यात्मा का भेद मिट जाय और शरीर बल से समर्थ ही इतनी दीर्घ यात्रा कर वहां जा सके।" यह सुनकर लक्ष्मण चौंक पड़े कि कहीं यह महत्वाकांक्षा पूरी गई होती तो श्रुति शास्त्र और सत्कर्म सदा के लिए समाप्त हो जाते।

"मैं चाहता था कि संसार में कभी कोई रोगी या वृद्ध न हो। इसके लिए वृक्षों में अमृत फल लगने का विधान करना चाहता था। मेरे जैसा प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को जानने वाला व्यक्ति अगर इस काम में लग गया होता तो वार्धक्य एवं मृत्यु को समाप्त कर देने वाला आविष्कार अवश्य कर लिया होता।" लक्ष्मण ने हंसकर कहा— 'आचार्य! आपकी महत्वाकांक्षाओं का अपूर्ण रह जाना ही विश्व के लिए वरदान हो गया।'

इसी समय श्रीराम आये और अंजलिबांधकर मस्तक झुकाते हुए रावण के दाहिने इस प्रकार खड़े हो गये जिससे वह उन्हें भलीभांति देख सके। प्रभु राम ने कहा "मैं इक्ष्वाकुगोत्रीय राम पौलस्त्य दशग्रीव को प्रणाम करता हूं। अपने आचार्य को अभीष्ट दक्षिणा देने में उनके चरणों में उपस्थित हूं।"

दशग्रीव के अपलक नेत्र श्रीराम के मुख पर लग गये और मुख से अंतिम शब्द निकला, "राम"। इसके बाद एक ज्योति उनके शरीर से निकली। उसने प्रभु राम की प्रदक्षिणा की और उनके चरणों में लीन हो गयी।

सह शिक्षक, श्री जैन विद्यालय, कलकत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org